RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-3, जून जुलाई अगस्त 2023

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 3 जून-जुलाई-अगस्त-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

भारतीय परम्परा में स्त्री की स्थिति और उनके अधिकार

डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय परंपरा में स्त्री की स्थिति और उनके अधिकारों का विवेचन वैदिक साक्ष्यों के आधार पर करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री को केवल पारिवारिक इकाई तक सीमित नहीं रखा गया था, बल्कि उसे शिक्षा, धर्म और सामाजिक उत्तरदायित्वों में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। वेदों में स्त्री को समाज की नैतिक, बौद्धिक और धार्मिक चेतना का केंद्र माना गया है। इसी कारण स्त्री-शिक्षा को अनिवार्य बताया गया है, क्योंकि सुशिक्षित स्त्री ही वेदोक्त कर्मों, विशेषत: यज्ञादि अनुष्ठानों, को विधिपूर्वक सम्पन्न कर सकती है।

वेदों के अनुसार स्त्रियों का भी उपनयन, अध्ययन और यज्ञ में सहभाग का अधिकार था। ऋग्वेद में ज्ञान की अधिष्ठात्री के रूप में सरस्वती का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह वास्तव में आदर्श शिक्षित स्त्री का ही प्रतीक है। ऋग्वेद का यह मंत्र विशेष रूप से स्त्री-शिक्षा के आदर्श को स्पष्ट करता है—

चोदयत्री सूनृताना चेतन्ती सुमतीनाम् ।

यज्ञं दध सरस्वती ॥ (ऋग्वेद 1.3.11)

इस मंत्र में सरस्वती को 'सूनृतानां चोदयित्री' कहा गया है, अर्थात् वह सत्य और प्रिय वचनों को प्रेरित करने वाली है। यहाँ स्त्री की वाणी को केवल संवाद का साधन नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक अनुशासन की शक्ति माना गया है। वह स्वयं भी सत्य एवं मधुर वाणी का प्रयोग करती है और समाज के अन्य सदस्यों को भी उसी मार्ग पर प्रेरित करती है। यह गुण एक शिक्षित और संस्कारित स्त्री में ही संभव है।

सरस्वती शब्द 'सृ गतौ' धातु से निष्पन्न है। व्याकरणशास्त्र में 'गति' के तीन अर्थ माने गए हैं—

गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं, गमनं, प्राप्तिश्चेति।

इस व्याख्या के अनुसार सरस्वती का तात्पर्य उस स्त्री से है जो ज्ञान से युक्त हो, जो स्वयं प्रगति करे और दूसरों को भी प्रगति की ओर ले जाए। इस प्रकार सरस्वती केवल देवी नहीं, बल्कि विदुषी स्त्री का आदर्श रूप है। मंत्र में उसे 'सुमतीनां चेतन्ती' कहा गया है, अर्थात् वह उत्तम बुद्धि को जाग्रत करने वाली है। वह अपने पति, पुत्र और परिवार के अन्य सदस्यों को उचित परामर्श देती है, जिससे परिवार और समाज में सद्बुद्धि तथा विवेक की स्थापना होती है।

मंत्र के अंतिम चरण में कहा गया है—'यज्ञं दधे सरस्वती', अर्थात् सरस्वती यज्ञ को धारण करती है। इसका अर्थ यह है कि विदुषी स्त्री यज्ञों का विधिवत् अनुष्ठान करने में सक्षम होती है और यज्ञ की

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

भावना—त्याग, परोपकार और लोककल्याण—को अपने जीवन में उतारती है। इस प्रकार वैदिक परंपरा में स्त्री को केवल गृहकार्य तक सीमित न मानकर यज्ञमयी जीवन-दृष्टि की वाहिका माना गया है।

ऐसी विदुषी और यज्ञशील स्त्री समाज में पूजनीय मानी गई है। ऋग्वेद में यह बात अत्यंत स्पष्ट रूप से कही गई है कि देवता और यज्ञकर्ता ऐसी सरस्वती का आवाहन करते हैं—

सरस्वतीं देवयन्तौ हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतौ अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ (ऋग्वेद 10.17.7)

इस मंत्र में कहा गया है कि यज्ञ करने वाले देवप्रिय लोग सरस्वती का आवाहन करते हैं और वह यज्ञकर्ता को श्रेष्ठ फल प्रदान करती है। यहाँ सरस्वती ज्ञान, सदाचार और यज्ञशीलता की प्रतीक है, जो समाज को उन्नति की ओर ले जाती है। यह सम्मान केवल देवी के रूप में नहीं, बल्कि उस विदुषी स्त्री के लिए है जो ज्ञान और धर्म के द्वारा समाज का मार्गदर्शन करती है।

यजुर्वेद के चतुर्दश अध्याय में स्त्री-शिक्षा का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह वैदिक परंपरा में नारी की उच्च और गरिमामयी स्थिति को स्पष्ट करता है। विशेष रूप से द्वितीय मंत्र में स्त्रियों को सौभाग्य, कुल-उन्नति और सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए वेदज्ञान रूपी अमृत का पान करने का आदेश दिया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक दृष्टि में स्त्री का सौभाग्य आभूषणों या बाह्य साधनों पर नहीं, बल्कि शिक्षा, ज्ञान और सद्कर्मों पर आधारित था।

यजुर्वेद के मंत्र में स्त्री को 'कुलायिनी' कहा गया है-

कुलायिनीं घृतवती पुरन्धिः स्योने सद सदने पृथिव्याः।

अभि त्वां रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्य्यू सांदयतामिह त्वां ॥

अर्थात् कुल की उन्नति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहने वाली। 'घृतवती' पद द्वारा उसके स्वास्थ्य, शक्ति और तेज पर बल दिया गया है, जबकि 'पुरन्धिः' शब्द उसके अत्यन्त बुद्धिमती और कर्मशील होने का बोध कराता है। यास्काचार्य के अनुसार 'पुरन्धिः' का अर्थ है—बहुत बुद्धि और बहुत कर्म करने वाली स्त्री। इससे यह स्पष्ट होता है कि वेद आलसी या निर्बल स्त्री का नहीं, बल्कि सक्रिय, विवेकशील और कर्मठ नारी का आदर्श प्रस्तुत करता है।

मंत्र में स्त्री को सुखद गृह में प्रतिष्ठित होने तथा सौभाग्यवृद्धि के लिए वेदमंत्रों के अमृत का पान करने की प्रेरणा दी गई है। यह स्त्री-शिक्षा का सशक्त प्रमाण है, क्योंकि वेद स्वयं स्त्रियों को अध्ययन-अध्यापन और धर्मज्ञान के योग्य मानते हैं। ऐसी शिक्षित स्त्री की प्रशंसा ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले विद्वान भी करते हैं, जो उसके सामाजिक सम्मान को दर्शाता है।

इसी प्रकार यजुर्वेद में राष्ट्र की उन्नति के लिए भी 'पुरन्धि' अर्थात् बुद्धिमती और कर्मशील स्त्री की कामना की गई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक परंपरा में स्त्री-शिक्षा को केवल पारिवारिक नहीं, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति का आधार माना गया।

इन उत्तम गुणों से सम्पन्न होकर स्त्रियों को सर्वथा सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहिए, किन्तु

वेदों के उत्तम ज्ञान के बिना सौभाग्य की वास्तविक प्राप्ति सम्भव नहीं मानी गई है। इसी कारण वेदों में स्त्रियों को यह उपदेश दिया गया है कि वे धर्मज्ञान के लिए वेदामृत का ऐसा पान करें कि सभी छोटे-बड़े विद्वान उनकी विद्या और गुणों की प्रशंसा करें। यह ज्ञान स्वतः नहीं प्राप्त होता, बल्कि ज्ञान-यज्ञ के नेता महाविद्वान, संयमी अध्यापक-उपदेशकों तथा अध्यापिकाओं और उपदेशिकाओं के मार्गदर्शन से ही सम्भव है। वेद यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्रियों को शास्त्रीय शिक्षा के द्वारा उत्तम गृहिणी और कर्तव्यपरायण माता बनना चाहिए। ऐसी शिक्षा जो स्त्री को गृह-कर्तव्यों से विमुख या उदासीन बना दे, उसे वेद उचित नहीं मानते।

ऋग्वेद में स्त्री के शिष्टाचार और मर्यादित आचरण का निर्देश मिलता है—

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पयादकौ हेर।

मा तें कशप्लुकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूवथि॥

इस मंत्र में स्त्री को सभ्यता, संयम और शालीनता के नियमों का पालन करने की शिक्षा दी गई है। मर्यादित दृष्टि, संयत गमन और शालीन वेशभूषा के साथ जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री ही वास्तव में उच्चतम वैदिक पद 'ब्रह्मा' के आसन के योग्य बन सकती है। यहाँ 'ब्रह्मा' से अभिप्राय चारों वेदों का ज्ञाता महाविद्वान है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक काल में स्त्री को भी सर्वोच्च बौद्धिक पद प्राप्त करने की क्षमता और अधिकार स्वीकार किया गया था।

इसी भाव को अथर्ववेद में और अधिक स्पष्ट किया गया है—

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मनान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।

अनाव्याधां दवपुरां प्रपद्यं शिवा स्योना पतिलोके वि राज॥

इस मंत्र में नववधू को उपदेश दिया गया है कि वह परमात्मा को सर्वव्यापक जानकर और वेदज्ञान से प्रेरित होकर अपने समस्त आचार-विचार और व्यवहार को वेद के अनुसार बनाए। उसका जीवन वेदविरुद्ध न हो। ऐसे आचरण से वह रोगरहित, कल्याणकारिणी और सुखदायिनी बनकर पति-गृह में प्रतिष्ठित होती है।

वेदों के अनुसार स्त्रियों के लिए वही शिक्षा उचित मानी गई है जो उन्हें सदाचारिणी, विदुषी, गृहकार्य में दक्ष, उत्तम गृहिणी तथा सन्तान के लिए आदर्श माता बनाए। ऐसी शिक्षा केवल बौद्धिक नहीं होती, बल्कि आचार, व्रत और कर्तव्यबोध से युक्त होती है। इसी आदर्श का प्रतिपादन अदिति देवता से सम्बद्ध मन्त्रों में विशेष रूप से किया गया है, जहाँ माता के कर्तव्यों और उसकी सामाजिक भूमिका को स्पष्ट किया गया है।

ऋग्वेद में कहा गया है— **शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः॥**

इस मन्त्र में 'अदिति' का अर्थ यास्काचार्य के अनुसार 'अदीना देवमाता' है, अर्थात् वह माता जो दीनता, दुर्बलता और प्रमाद से रहित हो। सत्य भाषण, अहिंसा और परोपकार जैसे उत्तम व्रतों का पालन करते हुए वह अपनी सन्तान और समाज के लिए शान्तिदायिनी बनती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि माता का मुख्य कर्तव्य अपने आचरण द्वारा परिवार में शांति और सद्भाव की स्थापना करना है।

अदिति शब्द का माता के अर्थ में प्रयोग स्वयं वेद में भी किया गया है—

अदतिद्यर्यौरदीतिर्न्तरिक्षमर्दितिर्माता स पिता स पुत्रः।

विश्वे देवा अर्दितः पञ्च जना अदीतिर्जातमदतिर्जनइत्वम्॥

इस मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि अदिति केवल देवता नहीं, बल्कि माता के व्यापक और आदर्श रूप का भी प्रतीक है। व्रतधारिणी, संयमी और सदाचारी माता ही प्रजा के लिए शान्तिदायिनी हो सकती है, इसलिए उसे सदा उत्तम व्रतों को धारण करना चाहिए।

ऋग्वेद में माता के इस कर्तव्य को और स्पष्ट किया गया है—

अदीतिः पात्वंहसः सदावृधा॥

इस मन्त्र के अनुसार अदिति रूपा माता अपनी सन्तान को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक—तीनों दृष्टियों से उन्नत करने वाली होती है तथा उन्हें पापों से बचाकर पवित्र जीवन की ओर प्रेरित करती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वेदों में मातृत्व का आदर्श अत्यन्त उच्च है। सन्तान को सर्वांगीण उन्नति की ओर ले जाना और उन्हें पापकर्मों से दूर रखना माता का प्रमुख दायित्व माना गया है।

ऐसे पवित्र और महान कर्तव्य का पालन करने के लिए वेदों के अनुसार स्त्रियों का वेदज्ञान से सम्पन्न होना अनिवार्य है। केवल वही माता अपनी सन्तान को श्रेष्ठ बना सकती है, जो स्वयं सत्य, यज्ञ, धर्म और वेदविद्या से युक्त हो। इस तथ्य को ऋग्वेद 8.25.3 में अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है—

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा ।

मही जजानादितिर्ऋतावरी॥

इस मन्त्र में बताया गया है कि 'ऋतावरी' अर्थात् वेदज्ञान से सम्पन्न, यज्ञों का अनुष्ठान करने वाली, सत्यनिष्ठ माता ही 'मही अदिति' कहलाती है। ऐसी माता दीनता और हीनता से रहित, सच्ची स्वतंत्रता और उदारता से युक्त होती है। वह अपने प्रकृष्ट तेज और संस्कार-शक्ति के द्वारा 'विश्ववेदस'—सर्वप्रेमी, पाप-ताप निवारक, श्रेष्ठ और वरणीय मनुष्यों को उत्पन्न करती है। यहाँ 'ऋत' शब्द सत्य, वेद, यज्ञ और धर्म—इन सबका द्योतक है। अत: वेद यह घोषित करता है कि केवल वेदज्ञान से युक्त, सत्यनिष्ठ और उदार माता ही श्रेष्ठ सन्तान का निर्माण कर सकती है।

मातृशिक्षा और मातृदायित्व के इस आदर्श को ऋग्वेद 2.41.16 में अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है—

अम्बितमे नदीतमे देवतिम सरस्वति ।

अप्रशस्ता ईव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥

इस मन्त्र में विदुषी माता सरस्वती से प्रार्थना की गई है कि वह सन्तानों के दोषों और दुर्गुणों को दूर करके उन्हें प्रशस्त, अर्थात् गुणी और प्रशंसनीय बनाए। स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि सन्तान में विद्यमान दोषों का परिष्कार विदुषी माता के सदुपदेश और संस्कारों से ही सम्भव है।

ऋग्वेद में विदुषी स्त्री को केवल ज्ञानवती ही नहीं, अपितु व्यवहार में भी पूर्ण, प्रसन्नचित्त और दानशील बताया गया है। ऋग्वेद 2.32.4 में ऐसी विदुषी स्त्री को 'राका' नाम से संबोधित किया गया है।

राका का अर्थ पौर्णमासी तथा दानशीला है। जिस प्रकार पूर्णिमा की चन्द्रमा अपनी पूर्णता से समस्त जगत् को आनन्दित करता है, उसी प्रकार स्त्री को भी अपने परिवार को प्रसन्नता, सौहार्द और स्नेह से परिपूर्ण करने वाली होना चाहिए। वह स्वयं प्रसन्नवदना हो और अपने उत्तम भाषण तथा व्यवहार से परिवार के सभी सदस्यों को आनन्द प्रदान करे। मंत्र इस प्रकार है–

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुंवे श्रृणोतु नः सुभगा बोधंतु त्मनां ।

सीव्यत्वपः सूच्याच्छिंद्यमानया दयातु वीरं शतदार्यमुक्थ्यम्।।

इस मंत्र में राका रूपी स्त्री को सुमधुर वाणीवाली, सुन्दर स्तुति स्वीकार करने वाली और उत्तम ज्ञान व धर्म से सम्पन्न कहा गया है। वह प्रेम और प्रसन्नता के साथ सीना-पिरोना जैसे गृहकर्म करे तथा दानी, प्रशंसनीय और वीर सन्तान को जन्म दे। इससे स्पष्ट है कि वैदिक स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य स्त्री को प्रसन्न स्वभाव, मधुर वाणी, धर्माचरण और गृहकर्म-दक्ष बनाना है, न कि उसे कर्तव्यों से विमुख करना।

वेदों में यह भी बताया गया है कि स्त्री को वस्त्र-निर्माण जैसे शिल्पकर्मों में दक्ष होना चाहिए। ऋग्वेद में कहा गया है–

वि तंन्वते धियों अस्मा अपांसि वस्त्रां पुत्राय मातमे वयन्ति।

इस मंत्र का तात्पर्य है कि माताएँ अपने पुत्रों के लिए वस्त्र बुनती हैं और साथ ही उसके लिए उत्तम कर्मों तथा सद्बुद्धि का भी विस्तार करती हैं। अर्थात् माता का दायित्व केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित नहीं, बल्कि सन्तान के बौद्धिक और नैतिक विकास तक विस्तृत है।

पति के प्रति भी यही भाव व्यक्त किया गया है–

वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्न स्योनमुप स्पृशात्।।

अर्थात् पत्नियों द्वारा प्रेमपूर्वक बुने हुए वस्त्र पतियों के लिए विशेष सुखदायक होते हैं। इससे दाम्पत्य जीवन में स्नेह और सामंजस्य की महत्ता प्रकट होती है।

इसी वैदिक शिक्षा का संकेत विवाह-संस्कार में पारस्कर गृह्यसूत्र 1.4.13 में उद्धृत मंत्र से भी मिलता है–

या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ।

तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः।।

इस मंत्र में नववधू को उपदेश दिया गया है कि जिन देवियों ने कातना, बुनना और वस्त्र निर्माण किया है, वे उसे जीवनभर ऐसे शुद्ध वस्त्र प्रदान करें। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक आदर्श में स्त्री-शिक्षा में ज्ञान, धर्म, सदाचार के साथ-साथ सीना-पिरोना, बुनना और गृहशिल्प का प्रशिक्षण भी अनिवार्य रूप से सम्मिलित था।

वात्स्यायन मुनि कृत कामशास्त्र में देवियों के लिए जिन 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है, उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि स्त्री के सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास है। इन कलाओं में संगीत, वादन, गायन तथा विविध शिल्पों का समावेश है, जिससे स्त्री न केवल गृहस्थ जीवन को सौम्य और आनंदमय बना सके, बल्कि सांस्कृतिक परंपरा की संवाहिका भी बने। वेदों में भी संगीत और वाद्यकला को

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है और स्त्रियों को इनमें निपुण होने का स्पष्ट संकेत मिलता है।

ऋग्वेद के एक मंत्र में भक्ति और स्तुति के प्रसंग में विविध वाद्ययंत्रों की मधुर ध्वनि का उल्लेख मिलता है–

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्रयाय ब्रह्मोद्यंतम्।।

इस मंत्र में परम ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभु की स्तुति के साथ गर्गर, गोधा और पिङ्गा जैसे वाद्ययंत्रों के मधुर निनाद का वर्णन है। यद्यपि इन वाद्यों की आधुनिक पहचान को लेकर विद्वानों में मतभेद है, तथापि यह नि:संदेह है कि ये किसी न किसी प्रकार के तंत्री अथवा वाद्य यंत्रों के द्योतक हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में संगीत और वादन को धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग माना गया और स्त्रियों के लिए भी इन कलाओं का अभ्यास अपेक्षित था।

स्त्रियों द्वारा सामगान और वाद्य–वादन का स्पष्ट विधान लाट्यायन श्रौतसूत्र में भी प्राप्त होता है, जहाँ सामवेद के स्वरयुक्त गायन के लिए नियमित अभ्यास पर बल दिया गया है और पत्नी के लिए भी उपग्रह आदि स्वरभागों के अभ्यास का निर्देश है। इससे यह प्रमाणित होता है कि स्त्रियाँ केवल श्रोता नहीं थीं, बल्कि वैदिक गान–परंपरा की सक्रिय साधिका थीं।

इसी प्रकार ताण्ड्य ब्राह्मण (5.6.8) में भी स्त्रियों द्वारा अपघाटिला नामक वाद्य के साथ सामगान करने तथा ऋत्विक् कर्म में भाग लेने का उल्लेख मिलता है–

तं पल्यो अपघाटिलाभिरुपगायन्ति आर्विज्येनैव तत् ।
पत्यः कुर्वन्ति सह स्वर्गलोकमयानेति।।

इस विधान से स्पष्ट है कि स्त्रियाँ न केवल वीणा आदि वाद्यों के साथ गान करती थीं, बल्कि यज्ञीय अनुष्ठानों में भी उनकी सहभागिता मान्य थी।

पाकविद्या :- वैदिक दृष्टि में स्त्री–शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता नहीं, अपितु उसे सद्गृहिणी, सन्माता और समाजोपयोगी व्यक्तित्व बनाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति में पाकविद्या का विशेष स्थान है, क्योंकि शुद्ध, पौष्टिक और मर्यादित आहार के बिना न तो शरीर, न मन और न ही संस्कार पुष्ट हो सकते हैं। अत: वेदों में स्त्रियों को पाककर्म में दक्ष बनाने का स्पष्ट विधान प्राप्त होता है।

यजुर्वेद में बार–बार प्रयुक्त 'उखा' शब्द पकाने की बटलोई या पात्र का वाचक है, जो यह दर्शाता है कि भोजन–निर्माण को वैदिक जीवन में एक पवित्र और शिक्षणीय कर्म माना गया।

यजुर्वेद 11.58 में स्त्री को 'स्वौपशा' कहा गया है। अर्थात् स्वादिष्ट और हितकर भोजन बनाने में निपुण। मन्त्र में यह भाव निहित है कि शिक्षित, सौभाग्यवती और प्रेमशील स्त्री अपने हाथों से उखा धारण कर परिवार के लिए उत्तम भोजन का निर्माण करे। यहाँ पाककर्म को केवल सेवा नहीं, बल्कि स्त्री की बुद्धि, सौन्दर्य और संस्कार से जुड़ा कर्म बताया गया है।

यजुर्वेद 11.59 में अदिति शब्द द्वारा स्वतन्त्र, बुद्धिमती और सुखसम्पन्न स्त्री का निर्देश करते हुए कहा गया है कि वह अपनी धिया (बुद्धि), शक्ति और बाहुबल से उखा को सिद्ध करे। इसका तात्पर्य यह

है कि पाकविद्या केवल अभ्यास नहीं, बल्कि ज्ञान, विवेक और परिश्रम का समन्वय है। इसी मन्त्र में भोजन और सन्तान-पोषण को परस्पर सम्बद्ध किया गया है।

यजुर्वेद 11.60 में माता द्वारा पुत्रों और कन्याओं के लिए उखा में अन्न पकाने का उपदेश मिलता है। यहाँ स्पष्ट संकेत है कि बालक-बालिकाएँ ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या के साथ-साथ शुद्ध आहार बनाने और ग्रहण करने की शिक्षा भी प्राप्त करें। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक शिक्षा में पाकविद्या पारिवारिक संस्कार का अंग थी।

यजुर्वेद 14.1 में गृहस्थाश्रम की स्थिरता और धर्मयुक्त जीवन के साथ यह भी कहा गया है कि स्त्री उखा में पकने वाले अन्न की विद्या को प्रेमपूर्वक अपनाए। यहाँ पाकविद्या को विस्तृत, विविध और जीवनोपयोगी ज्ञान के रूप में देखा गया है।

वैदिक साहित्य में स्त्री-शिक्षा के अंतर्गत ओषधि-विज्ञान एवं वैद्यक विद्या को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद 10।97 तथा यजुर्वेद अध्याय 12 एवं 21 के अनेक मन्त्र यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्रियों को औषधियों का ज्ञान तथा चिकित्सा-कौशल अवश्य प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि इसके बिना न तो पारिवारिक स्वास्थ्य की रक्षा सम्भव है और न ही समाज का कल्याण।

ऋग्वेद का मन्त्र इस प्रकार है—

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतवचक्षणाः ।
तासांमसि त्वमुत्तमारं कामाय शं हृदे ॥

इस मन्त्र में ओषधियों को 'सोमराज्ञी' कहा गया है, अर्थात् चन्द्रमा के समान शीतल, जीवनदायिनी और प्रभावशालिनी। 'शतवचक्षणाः' का अर्थ है—अनेक प्रकार के गुणों से सम्पन्न। यहाँ 'उत्तमारम्' शब्द का प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है, जिसका आशय 'उत्तमा विदुषी' से है। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र के भावार्थ में स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियों को ओषधि-विद्या का अध्ययन अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इसके बिना रोग-निवारण और पूर्ण सुख-प्राप्ति सम्भव नहीं। इस प्रकार मन्त्र स्त्री को औषधि-ज्ञान में निपुण, कल्याणकारिणी और हृदय को सुख देने वाली बताता है।

ऋग्वेद में कहा गया है—

याश्चेदंमुपश्रृण्वन्ति याश्च दूरं परांगताः ।
सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सन्दत्त वीर्यम्।।

इस मन्त्र में समीपवर्ती और दूरवर्ती सभी प्रकार की औषधियों को एकत्र होकर 'अस्यै' अर्थात् इस स्त्री के लिए वीर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। 'अस्यै' शब्द का स्त्रीलिंग प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि औषधि-विज्ञान का यह ज्ञान कन्या या स्त्री को सिखाने का विधान है। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्री को औषधियों के गुण, संग्रह और प्रयोग का सम्यक् ज्ञान दिया जाना चाहिए।

यजुर्वेद में 'सरस्वती भिषक्' पद आया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि विद्या की देवी सरस्वती को भिषक्' अर्थात् वैद्या कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वैद्यक विद्या को स्त्रियों के लिए निषिद्ध नहीं, बल्कि आदर्श माना गया है।

ऋग्वेद का यह मन्त्र इस विषय में विशेष महत्त्व रखता है—

वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारीम्।।

इसका भाव यह है कि वेद और सत्यनियमों को जानने वाली (ऋतचित्) नारी राजा और प्रजा—दोनों की चिकित्सा भली-भाँति करे। यहाँ स्त्री को सक्षम चिकित्सक के रूप में स्वीकार किया गया है। वेद, स्वास्थ्य-नियम और औषधि-ज्ञान से सम्पन्न स्त्री, अपने कोमल, करुणामय और सहानुभूतिपूर्ण स्वभाव के कारण रोगियों की चिकित्सा में विशेष सफलता प्राप्त कर सकती है। यह भाव इस मन्त्र में निहित है।

वैदिक स्त्री-शिक्षादर्श का मूल उद्देश्य स्त्री को केवल गृहकार्य तक सीमित करना नहीं, बल्कि उसे विदुषी, कर्मकुशल, सद्गृहिणी और सन्माता बनाना था। इसी कारण वैदिक शिक्षा-पद्धति में स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन, शिल्प-शिक्षा, गृहकार्य-प्रशिक्षण, पाकविद्या, संगीत-विद्या और वैद्यक-विद्या का समन्वित विधान मिलता है। यह शिक्षा जीवनोपयोगी, धर्मप्रधान और समाजोपकारक थी। अपवादस्वरूप आजीवन ब्रह्मचर्य का विधान उन्हीं देवियों के लिए था जिनमें पूर्ण वैराग्य के साथ वेद-शास्त्रों का गहन ज्ञान हो और जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति समाज-कल्याण में समर्पित कर सकें।

प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में ऋषिकाएँ और ब्रह्मवादिनियाँ सक्रिय रूप से विद्यमान थीं। बृहद् देवता (2।84) में गोधा, घोषा, अपाला, विश्ववारा, लोपामुद्रा, यमी, इन्द्राणी, सरमा, वाक्, श्रद्धा, मेधा, सावित्री आदि अनेक विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। ये स्त्रियाँ वेद-मन्त्रों की द्रष्टा थीं और उनका लोककल्याण हेतु प्रचार करती थीं। हारीत धर्मसूत्र (21।24) में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्मवादिनियों का उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और भिक्षाचर्या का विधान था। इससे सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ वैदिक शिक्षा-प्रणाली की पूर्ण अधिकारी थीं।

पराशर-संहिता के सामसमाधवीय भाष्य (1893) में उद्धृत श्लोक से यह ऐतिहासिक तथ्य पुष्ट होता है कि प्राचीन काल में कुमारियों का भी मौञ्जीबन्धन, वेदाध्ययन, अध्यापन और सावित्री-जप होता था। उपनिषदों में गार्गी और मैत्रेयी के ब्रह्मविद्या-संवाद, महाभारत में सुलभा संन्यासिनी तथा द्रौपदी के ज्ञान-विवेचन, और पुराणों में वेदवती कमलाशा का वर्णन—ये सभी प्रमाण स्त्री-बौद्धिक उत्कर्ष के सशक्त उदाहरण हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कमलाशा के विषय में कहा गया है कि चारों वेद उसकी जिह्वा पर स्थित थे, इसलिए वह वेदवती कहलाती थी।

द्रौपदी के वेदज्ञान की पुष्टि करते हुए मध्वाचार्य ने महाभारत-तात्पर्य-निर्णय में कहा है कि उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रौपदी) के समान समस्त वेदों का अध्ययन करना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि वेदाध्ययन स्त्रियों के लिए असामान्य नहीं, बल्कि आदर्श था।

मध्यकाल में स्त्रियों को वेदाध्ययन से वंचित किया गया, जिसका परिणाम सामाजिक और सांस्कृतिक पतन के रूप में सामने आया। इसके विपरीत, वैदिक काल में स्त्रियों के वेदाधिकार को देश-विदेश के विद्वानों ने एकस्वर से स्वीकार किया है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 'रीलिजन एण्ड सोसायटी' में स्पष्ट लिखा है कि प्राचीन काल में कन्याओं का उपनयन होता था और वे सन्ध्या-वन्दन करती थीं। डॉ. मीज ने 'धार्म एण्ड सोसायटी' में यह स्वीकार किया है कि ऋग्वैदिक भारत में स्त्रियाँ ऋषिका थीं, यज्ञों में पति के साथ सहभागी होती थीं और पौरोहित्य तक कर सकती थीं।

इसी वैदिक आदर्श को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से ऋषि दयानन्द सरस्वती ने स्त्रियों के लिए व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प और वेदविद्या के अध्ययन पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार इन विद्याओं के बिना न तो गृह-प्रबन्ध, न सन्तान-पालन, न स्वास्थ्य-रक्षा और न ही धर्माचरण सम्भव है।

निष्कर्षत: वैदिक आदर्शों के अनुसार स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें विदुषी, सदाचारिणी, कर्मकुशल, गृहकार्य दक्ष और सन्माता बनाना था। इसके लिए उन्हें वेदाध्ययन, शिल्प-शिक्षा, गृहकार्य शिक्षा, पाकविद्या, संगीत विद्या और वैद्यक विद्या सीखनी आवश्यक थी। अपवादस्वरूप आजीवन ब्रह्मचर्य का विधान केवल उन्हीं स्त्रियों के लिए था जिनमें पूर्ण वैराग्य और गहन वेद-ज्ञान था।

ऐतिहासिक प्रमाण बताते हैं कि ऋषिकाएँ और ब्रह्मवादिनियाँ जैसे गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, कमलाशा आदि समाज-कल्याण हेतु सक्रिय थीं, वेदों का अध्ययन करती थीं, यज्ञों में भाग लेती थीं और कभी-कभी पौरोहित्य भी करती थीं। मध्यकाल में स्त्रियों को वेदाधिकार से वंचित किया गया, जिससे समाज में नकारात्मक प्रभाव पड़ा। वैदिक शिक्षा में स्त्रियों को सदैव बुद्धिमती, कर्मठ, धर्मपरायण और सौभाग्यशाली गृहिणी बनने का उपदेश दिया गया। शिक्षा का लक्ष्य न केवल व्यक्तिगत विकास, बल्कि संतानोत्पत्ति, परिवार कल्याण और समाजोपयोगिता भी था। डॉ. दयानन्द सरस्वती और आधुनिक विद्वानों ने इस आदर्श का समर्थन करते हुए इसे पुनर्जीवित करने पर बल दिया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा, डॉ. रामकुमार, वैदिक साहित्य में स्त्रियों की दशा, दिल्ली, 2015*
2. *आर्य, डॉ. अशोक, वेद में आदर्श स्त्री-शिक्षा, जयपुर, 2018*
3. *पांडा, डॉ. प्रमोदिनी, वैदिक एवं बौद्ध कालीन नारी शिक्षा, कोलकाता, 2018*
4. *राव, डॉ. शिवांगी, वैदिक काल में नारी की स्थिति, हैदराबाद, 2019*
5. *बिशारिया, डॉ. पूनित, ऋग्वेद की ऋषिकाएँ, मुंबई, 2022*
6. *स्वर्गविभा प्रकाशन स्त्री विमर्श का वैदिक परिप्रेक्ष्य, दिल्ली, 2022*
7. *अनन्ता जर्नल, वैदिक काल में नारी शिक्षा, वाराणसी, अनन्ता जर्नल, 2024*
8. *रिसर्च गुरु जर्नल, वेदों में नारी की भूमिका, नई दिल्ली: रिसर्च गुरु जर्नल, 2020*
9. *दयानंद सरस्वती, स्वामी, आर्य समाज ग्रंथ: स्त्री शिक्षा, दिल्ली, आर्य प्रकाशन, 2016*
10. *शर्मा, रामकुमार, वैदिक साहित्य में स्त्रियों की दशा, दिल्ली, 2015*
11. *Majumdar, R.C., Education in Ancient India, Calcutta: Firma KLM, 1936*
12. *R.C. Majumdar, Ancient India, 3rd edition, Delhi, Motilal Banarsidass, 1950*
13. *McKenzie, J.S., Upanishads: A Critical Study, London: Oxford University Press, 1937*
14. *Belvalkar, S.K., The Mahabhaya of Patanjali, Pune, Bhandarkar Oriental Research Institute, 1962*
15. *Keay, John, India: A History, London: Harper Collins, 2000*